उत्तर मध्यकालीन भारत में व्यापारी एवं उनकी गतिविधीयॉ

डॉ. डी.एस.कडव
इतिहास विभाग प्रमुख
जे. एम. पटेल महाविद्यालय, भंडारा.

सारांश :

प्राचीन कालसे भारत के विदेशों से व्यापारी सम्बन्ध थे । मध्यकाल में भी यह सम्बन्ध बरकरार थे । विदेशी माल भारतीय बाजारों मे बराबर आता था । भारतीय माल भी विदेशोंमे जाता था । लेकिन आयात व्यापार से निर्यात व्यापार की मात्रा अधिक होती थी। आन्तरिक एवं विदेशी व्यापारपर भारतीयोंका एकाधिकार स्थापित था । भारतीय व्यापारी विश्वस्तर पर प्रसिद्ध थे । बँको की तरह वह व्यापारी कर्जा देते थे । लेकिन यह स्थिती युरोपीय व्यापारी कंपनीया, जिसमे डच, पोर्तुगीज एवं अंग्रेज सामील थे आने तक बरकरार रही । बादमें इस विदेशी कंपनीयोंने उस वक्त के शासकों पर प्रभाव डालकर रियायते प्राप्त की, धिरेधिरे व्यापारी क्षेत्रों पर उनका एकाधिकार निर्माण हुआ । इस क्षेत्र से भारतीयों का निर्मुलन हुआ । इस व्यापारी एकाधिकार का विस्तार करके अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनीने भारतपर अपनी सत्ता स्थापित की । भारत अंग्रेजो का गुलाम बना । यह प्रतित करने के लिए यह शोधनिबंध प्रस्तुत किया गया है ।

विवरण – व्यापारी :–

१६ वी – १७ वी शताब्दी में विश्व का सबसे धनवान व्यक्ति व्यापारी समझा जाता था । उस काल में हिंदुस्थान में दो तरह के व्यापारी होते थे। आर्थिक दृष्टीकोन से बहुतही सम्पन्नता प्राप्त व्यापारी बडे व्यापारी समझे जाते थे । जो व्यापारी कम सम्पन्न होते थे उनको छोटे व्यापारी माना जाता था.

नकवी का कहना है, ''जैसे ही आगरा शहर को राजधानी बनाया गया, हिंन्दु बनियों के साथ–साथ इसाई एवं मुस्लिम व्यापारी आगरा में धीरे–धीरे बस गये । ये बनिया इतने धनी होते थे कि धीरे–धीरे उन्होने अपनी धाक बना ली थी जिन पर शासन दरबार का नियन्त्रन भी काम नही करता था । मुगल शासन के पतन के दौरान ये व्यापारी अक्सर दिवालिया हुए अमीरों को कर्जा देते थे । इन बनियों में ऐसे लोगों की संख्या उल्लेखनिय है, जो व्यापार का संचालन करते थे । इस प्रकार संचालक होने के नाते अधिक व्यापार करते थे । ये सुझबुझ वाले व्यापारी और रूपया चुकाने में इमानदार होते थे ।[१]

ओ.पी. सिंह लिखते है, ''सामान्यत: व्यापारी आगरा के निकट सिकन्दरा मे निवास करते थे । आगरा व्यापार का प्रमूख केंद्र था । दिल्ली और लाहोर की तरह आगरा में भी विदेशी व्यापारी नगर में रहकर अपना योगदान देते थे । सर्राफ मनी चेंजर होते थे। सम्राट अकबर के मुद्राशास्त्रने व्यापार को अत्याधिक प्रभावित किया था । अकबर बादशाहाने मुद्राओं की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया था । इसी वजह से शाही टाकसालों में सर्राफों की आवश्यकता रहती थी ।[२]

कर भुगतान के बारे में धनपति पाण्डेय लिखते है, उस समय विभिन्न प्रकार के सिक्के जिसमें विदेशी सिक्के भी सामील थे, बाजारों में प्रचलित थें । सम्राट ने ऐसी व्यवस्था अंमल में लायी थी, जिसके अंतर्गत आम जनता राज्य को अपनी सुविधा नुसार कर का भूगतान कर सकती थी ।[३]

इस व्यवस्था की वजह सें मुद्रा परीवर्तन हेतु सर्राफों की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती थी । इसके अलावा इन्हें सिक्कों के अवमूल्यन पर भी नजर रखनी पडती थी, जो कि मुख्यत: संचरण प्रक्रिया में शिथिलता के कारण होता

था । सर्राफ कर दाता एवं बँकर के रूप में कार्य करते थे । इन सर्राफो का विभिन्न कार्यो में संलग्नता थी जहॉ एक तरफ व्यापारी लेन देन में कुशल एवं अनुभवी बनाते थे वहीं दुसरी तरफ धन का प्रेषण बडे व्यापारिक केंद्रो से छोटे गॉवों तक करते थे ।[४]

यह व्यापारी कभी कभी बँक के समान भी कार्य करते थे । वे रक्कम जमा करते थे, ऋण देते थे एवं हुण्डियाँ जारी करते थे । अंग्रेज और डच व्यापारी जो आग्रा में रहते थे, अपनी पूँजी का निवेश हेतु प्रेषण सुरत से बिल ऑफ एक्सचेंज का प्रयोग करते थे, जिसे सराफों द्वारा अपना निश्चित लाभ अलग करने के बाद इन्हे नकद रूप में परिवर्तीत कर दिया जाता था । कभी कभी व्यापारी सराफों से उधार भी लेते थे।[५]

मध्ययुगीन व्यापार के बारे में डॉ. आर्शिवादीलाल श्रीवास्तव लिखते है ''गाँवो और नगरों में ऐसे व्यापारी और कलाकार संघ थे, जो बडे पैमाने पर व्यापार करते थे । राजकीय सहाय्यता न पाने पर भी ये व्यापारिक संस्थाऐ विदेशी आक्रमणों और आन्तरीक क्रान्तियों के धक्के सहन कर गयी थी ।[६]

दिनेशचंद्र भारद्वाज ने लिखा है ''व्यापारीयों की आर्थिक दशा अच्छी थी । उनके पास अपार धन होता था । जो व्यापारी, समुद्रतटपर व्यापार करते थे; उनका स्तर उन लोगों से कही उँचा था जो देशके आन्तरिक भाग में निवास करते थे । समुद्रतट के व्यापारियों की आर्थिक सम्पन्नता का कारण विदेशी व्यापार था । व्यापारी वर्ग को सरकारी उच्च पदाधिकारियों की अपेक्षा कम सन्देह की दृष्टी से देखा जाता था । वे सर्वसाधारण के आदर के पात्र भी थे ।''[७]

बडे नगरों में बडे–बडे बाजार थे जहॉ आवश्यकता तथा विलास एवं श्रृंगार सामग्री यथेष्ट मात्रा में मिल सकती थी । यह व्यापारी बहुधा धनी होते थे । परंतु वे अपना धन पृथ्वी के भीतर छिपाकर रखते थे और बहुत सादे ढंग से रहते थे । श्रृंगार की सामग्री का वे मनमाना दाम लेते थे । इन व्यापारियों को तीन विशेष असुविधाओं का सामना करना पडता था । यद्यपि सम्राटों ने स्थानीय कर हटा दिए थे, फिर भी राहदरी और पानदरी के कर प्राय: बराबर लिए जाते रहे । सडकों पर अनेक स्थलों में डाकुओं का भय था । इसलिए राहगीरों तथा व्यापारियों की रक्षा का भार स्थानीय कर्मचारियों को दिया गया था । इस काम के लिए उन्हें विशेष सैनिक रखने पडते थे । उनके खर्च के रूप में उनको राह–कर माँगने का अधिकार दे दिया जाता था । बहुधा वे लोग मूल्य का १/१० कर लगा देते थे । यही नहीं, वे वस्तुओं का मूल्य अपनी इच्छा से स्थिर करते थे और व्यापारी को आगे जाने देने के पूर्व उसका कुछ सामान भी ले लेते थे और उसका दाम बहुत कम देते थे । इन व्यापारियों के प्रथम कण्टक यह कथित रक्षक थे । दूसरे, अनेक मार्गो पर चोर डाकूओं का अत्याधिक भय रहता था । यह प्राय: उन स्थानों में था जहाँ जंगल होते थे । इनसे रक्षा करने के लिए व्यापारियों को अपने साथ पहरेदार लेकर चलना होता था । तीसरे, उनको बडे मंसबदारों को ही नहीं वरन अन्य राजकर्मचारियों को भी उधार सामान बेंचना पडता था । यह रूपया वसूल करना सदा सरल नहीं होता था । इसलिए इन व्यापारियों की आय अधिक रहने पर भी उसमें स्थायित्व नही रहता था और उन्हें आकस्मिक घाटे उठाने पडते थे । परंतु इनके पास गुप्त धन रहता था ।[८]

समुद्र–तट के व्यापारी अधिक ठाट से रहते थे क्योंकि उनकी स्थिती अधिक सुरक्षित होती थी। कूछ व्यापारी अत्यंत समृद्ध थे । सूरत का व्यापारी पीर जी बोहरा संसार का सबसे धनी व्यापारी समझा जाता था । अब्दुलगफर नामक व्यापारी का अकेला व्यापार ईस्ट ईण्डिया कम्पनी के बराबर था । समुद्र–तट पर इन भारतीयों के अतिरिक्त अंग्रेज, पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी, ईरानी और अरब व्यापारी भी पाए जाते थे । चीन और जापान से भी कुछ व्यापारी यहाँ आते थे । भारतवर्ष का तटीय जहाजी व्यापार प्राय: पूरा का पूरा भारतीयों के हाथ में था । समुद्र पार के व्यापार में अत्याधिक प्रतिद्वंदिता थी । जब तक समुद्र तट से होकर जाने से व्यापार में बाधा नहीं थी तब तक सिंध, गुजरात और खम्भात के भारतीय व्यापारी ईरान, अरब, मिस्त्र, तुर्की आदि देशों तक जाते थे । स्थलमार्ग से कंदहार होकर भी व्यापार

होता था । परंतु पुर्तगालियों के आगमन के बाद यूरोप को जानेवाला सामान उनके जहाजों में जाने लगा । आगे चलकर डचों ने उनकी शक्ती कम करके पूर्वी द्वीपों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर दिया । बाद में इन सबको हराकर सन् १७६३ तक अंग्रेजों ने अपना प्रभूत्व स्थापित कर लिया । इस भाँति समुद्र–पार के व्यापार तथा समुद्री शक्ती की ओर भारतीय शासकों ने उचित ध्यान नहीं दिया । व्यक्तिगत व्यापारियों द्वारा यह कार्य संपादित होना तभी संभव था जब आवश्यकता पडने पर वे अपने देश की सरकार से सैनिक सहायता पा सकते । यह संभव न होने के कारण ही विदेशह व्यापारियों के भारत में पैर जम गए ।[९]

बी.एस. भार्गव का कहना है ''१६ वी शताब्दी में भारत का विदेंशों के साथ आयात व निर्यात प्रचुर मात्रा में था । विदेशों से भारत आवश्यकता की वस्तुएँ, कच्चा माल व विलासी सामग्री मँगवाता था जो कि यहाँ के उच्चवर्ग की सर्वाधिक पसन्द थी । आवश्यकता की सामग्री में भी सोना व चाँदी की वस्तुएँ, अरब व फारस के घोडे सबसे अधिक मात्रा में मँगवाये जाते थे । दक्षिण के राज्य अपनी सुरक्षा के लिए विदेशों से धातु, हाथी दाँत इत्यादि की वस्तुएँ और कच्चा रेशम मँगवाते थे । विलासी सामग्रियों में रेशम, मखमल, जरी का माल, मसाले, तेल, इत्र इत्यादि मँगवाये जाते थे । मिर्च व मसाले, कच्चे सूत, नील तथा अन्य रंग इनके एवज में भारत से बाहर जाते थे । मध्ययुग के भारतवासी अपने माल को अधिक से अधिक मात्रा में बेचने को उत्सुक रहते थे । जो विदेशी मुद्रा लेकर भारत आता था यह यहाँ से खाली हाथ वापर नही लौटता था । इससे यह जाहिर है कि मुगलकालीन भारतवासी व्यापार व वाणिज्य के उत्सुक थे।[१०]

१५ वी शताब्दी के अन्तिम भाग में पश्चिमी नाविक भारत पहुँच गये थे । वास्कोडिगामा ने दु:खपूर्ण परिस्थितियों में अनुभव किया कि जल और स्थल व्यापार मुस्लिम व्यापारियों के हाथों में है । गैर मुस्लिम व्यापारी भाग देकर मुसलमानों के जहाजों पर माल भेजते थे। मालाबार तट से रवाना होनेवाले जहाज अधिकांश मुसलमानों के थे । इन मुस्लिम व्यापारियों ने अपने आपको परिस्थिती के अनुकूल ढाल रखा था। भारत के पश्चिमी तट पर खासकर मलाबार व कालीकट के बन्दरगाह से सर्वाधिक व्यापार फारस की खाडी व लाल सागर तक होता था । पीगू व मलाका से जहाज कालीकट तक पहुँचते थे । पुर्तगालियों के भारत पहुँचने के बाद इस सामुद्रिक व्यापार मे कुछ अन्तर आ गया था जो माल अब तक फारस की खाडी में होकर जहाजों द्वारा भेजा जाता था वही अब सीरिया के रास्ते से स्थल–मार्ग से भेजा जाने लगा। स्थल–मार्ग मिश्र की भूमि में से होकर गुजरता था । मिश्र की सरकार व्यापारिक चुंगी सर्वाधिक लेती थी लेकिन पुर्तगालियों ने भारत के सामुद्रिक व्यापार को अधिक से अधिक अपने कब्जे में करके १६ वी शताब्दी में भारतीय मुस्लिम राज्य को गहरा आघात पहुँचाया था । भारत के बन्दरगाहों को बहुत शीघ्र अपने कब्जे में करके पुर्तगाल ने माजमबिक से मलाया तक अपना प्रभाव क्षेत्र विकसित कर लिया था । इन लोगों ने सामुद्रिक व्यापार के सम्बन्ध में जो नियम बना लिये थे उन नियमों को मुस्लिम जहाजों के मालिको को भी स्वीकार करना पडा था । फिर भी मुस्लिम व्यापारियों को पुर्तगाली डाकुओं का इतना भय बना रहता था कि समकालीन विदेशी यात्री बारबोसा लिखता है : 'अधिकांश जहाज कुमारी अन्तरीप का चक्कर लगाकर भारत पहुंचते थे ।' भारतीय जहाजों के लाल सागर के तटवर्ती बन्दरगाहों पर रूकने के लिए पुर्तगालियों से आज्ञा लेनी पडती थी । पश्चिमी समुद्री डाकू इतने अधिक क्रियाशील हो गये थे कि मुसलमानों को जहाजी व्यापार धीरे–धीरे कम करना पडा था । मुस्लिम व्यापारियों और पुर्तगालियों के बीच सामुद्रिक व्यापार की प्रभुता के लिए जो संघर्ष छिडा हुआ था उस संघर्ष में राजनैतिक शक्तियों ने भाग लिया था। विजयनगर राज्य का समुद्री व्यापार १५४७ ई. के बाद पुर्तगालियों के हाथों में था । बीजापुर ने पुर्तगालियों से टक्कर लेकर अनावश्यक रूप से अपनी शक्ती को क्षीण कर लिया था । कालीकट का पुर्तगाली गवर्नर जैमुरीन इतना अधिक प्रभावशाली था कि वह कभी भी समुद्री डाकुओं के द्वारा किसी भी मुस्लिम व्यापारी को क्षति पहुँचा सकता था । स्पष्ट

है कि भारतवर्ष की हिन्दू परम्परा को बनाये रखते हूए मध्ययुग के मुसलमानों ने इस देश के सामुद्रिक व्यापार को लगभग ७०० वर्ष तक अपने प्रभाव में रखा । १४८५ ई. के बाद ईसाई धर्म के कट्टर शत्रु मुसलमानों के साथ सामुद्रिक प्रभाव के लिए संघर्ष छिडा जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों का समुद्र पर प्रभाव समाप्त हो गया । लेकिन उन्होंने स्थल–मार्ग से भारत का विदेशी व्यापार बदस्तूर बनाये रखा ।[११]

अवधबिहारी पाण्डेय लिखते है, ''इन विदेशियों का प्राय: विरोध नहीं किया जाता था । वरन बहुधा उनका स्वागत किया जाता था क्योंकि जो सामान वे लाते थे उसकी यहां बहुत आवश्यकता रहती थी । विदेशों से धातुओं में सोना, चाँदी, तांबा, सीसा और इस्पात मँगाया जाता था । इसमें सोना और चाँदी की विशेष माँग रहती थी क्योंकी स्वदेश में वे प्राय: नहीं के बराबर थे । अच्छी कोटि के ऊनी कपडे फ्रांस से आते थे । रेशम के कपडे इटली, ईरान तथा तूरान से आते थे । ईरानी कालीनों की भी माँग रहती थी। चीन से कच्चा रेशम मँगाया जाता था । सेना के लिए अच्छे घोडे भी विदेश से ही आते थे । भारत मे कुछ घोडे पैदा होते थे और उनकी नस्ल ठीक रखने के लिए बहुत चेष्टा की जाती थी परन्तु अच्छी जाति के घोडों की सदा कमी ही बनी रहती थी । भारतीय सेना में इराकी, अरबी अथवा ईरानी घोडे बहुत कम रहते थे । प्राय: तुर्की और ताजी घोडों से ही काम चलाया जाता था। घोडों का व्यापार जल तथा स्थल दोनों ही मार्गों से होता था । इस समय में खच्चर भी मँगाए जाते थे और उनका मूल्य कभी कभी १००० रूपया तक होता था। इनके अतिरिक्त फल, मेवे, शराब, दास–दासियाँ, कस्तूरी, चीनी के बर्तन, लडाई का सामान, श्रृंगार की वस्तूएँ, विचित्र और कलापूर्ण सामग्री आदि भी आते थे ।

यहाँ से विदेशों को सूती कपडे (छींट, सादे मोटे कपडे, मलमल आदि) सबसे अधिक परिमाण में जाते थे । गुजरात से रेशमी कपडा भी बाहर जाता था । काली मिर्च, मोती, सुँदर आभूषण तथा दर्शनीय वस्तुएँ भी विदेशों में जाती थी । डच व्यापारी बंगाल से कच्चा रेशम भी खरीदकर विदेश भेजते थे । नील और अफीम, चीनी तथा मिश्री की भी कुछ खपत विदेश में थी ।

किन्तु देश की जनसंख्या को देखते हुए विदेशी व्यापार का परिमाण काफी कम था क्योंकि राज्य को औरंगजेब के समय में कुल ३० लाख रूपया चुँगी से प्राप्त होता था ।[१२]

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव का कहना है ''भारत के बाहरी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे । देश से खेतोकि उपजें, सूती–रेशमी कपडे और जर्मन सिल्वर जैसी धातु, अफीम, नील आदि का निर्यात किया जाता था । घोडे, टट्टू, शाही परिवार और अमिरों के आमोद–प्रमोद की वस्तुऐं मुख्य रूप से विदेशों से मँगायी जाती थी । यह सुस्पष्ट है की देश का निर्यात आयात से कही अधिक था और व्यापारिक सन्तुलन भारत के ही पक्ष में रहता था । इसलिए यह आम धारणा बन गयी थी कि ''सभी देशों के व्यापारी सदैव भारत में शुद्ध सोना लाते रहते है और बदलें में जडी–बुटियॉ और गोंद की चीजें ले जाते है'' श्रीवास्तव आगे लिखते है, ''चीन मलाया द्विपसमुहों और प्रशान्त महासागर के अन्य देशों से हमारे व्यापारिक सम्बन्ध थे । ये सम्बन्ध समुद्री मार्गो से थे । भूटान, तिब्बत, अफगाणिस्तान, इराण और मध्य एशिया के अन्य देशों से भारत का व्यापार स्थलीय मार्गोसे होता था ।[१३]

मध्यकाल के भारतवासी बडे पैमाने पर सामुद्रिक व्यापार में रूचि नहीं रखते थे । उनकी परम्पराएँ और दृष्टिकोण रूढिवादी था और इसलिए गुजराती बनियों को छोडकर दक्षिण के 'जटियों' के अतिरिक्त शेष भागों के निवासी अपनी आवश्यकता की पूर्ति आन्तरिक आदान–प्रदान व्दारा कर लिया करते थे ।

स्वाभाविक रूप से भारत में बहुत से व्यापारिक केन्द्र बन गये थे । इन व्यापारिक केन्द्रों में महाजन और थोक व्यापारी होते थे । थोक व्यापारी वस्तुओं को बडे पैमाने में खरीदते व बेचते थे जबकि महाजन व्यापारियों को उधार रूपया देते थे । महाजनों के द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर रूपये का भुगतान हुंडियों के द्वारा किया जाता था,

थोक व्यापारियों को लेन–देन में दलालों से विशेष सहायता मिलती थी । विदेशी यात्री मैनरीक ने अकेले पटना शहर में ९०० दलालों से भेंट की थी जो व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा करते थे । सम्भवत: यह दलाल ही काफिलों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल पहुँचाते थे । राजपूताने के बंजारे ऊँटों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल पहुँचाने में सहायता देते थे । यह बंजारे चलती–फिरती दुकानें भी लगाते थे जहाँ यात्रियों को आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं । माल ढोने के लिए बंजारे ऊँटों के अलावा बैलों का भी प्रयोग करते थे ।

भारत के मुस्लिम शासकों ने आन्तरिक व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए सड़कों व पुलों का निर्माण नहीं करवाया था । अपितु सड़कों पर सुरक्षा की व्यवस्था भी थी । प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर जान व माल की सुरक्षा के लिए रक्षा दल नियुक्त होता था । 'टोम कार्यपथ' नामक विदेशी यात्री जब आगरा से लाहौर गया और ४०० कोस का लम्बा सफर तय किया तो शाही राजपथों के दोनों ओर बड़े–बड़े छायादार वृक्षों को देखकर सर्वाधिक प्रभावित हुआ था । उसके वर्णन से यह जाहिर होता है कि, भारत के मुगल सम्राट यात्रियों व व्यापारियों की सुविधाओं के लिए वृक्ष, सराय व कूएँ की व्यवस्था पर पूरा ध्यान देते थे । सम्भवत: इसीलिए मध्ययुग में भारत का स्थल–व्यापार चरम सीमा पर था ।[१४]

डॉ. यूसुफ हुसैन स्थल–मार्गीय आन्तरिक व्यापार की प्रगति पर विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय ढाँचा आन्तरिक व विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए पूरा–पूरा प्रयत्न करता था । जहाँगीर व शाहजहाँ के काल में यातायात के साधनों पर समुचित ध्यान देकर मुगल सम्राटों ने अनायास ही भारत के व्यापार को प्रोत्साहित किया । डॉ. कुलश्रेष्ठ ने भी भारत के मुगल सम्राट देश की चतुर्मुखी उन्नति के लिए व्यापार और वाणिज्य को सर्वाधिक महत्व देते थे । तात्पर्य यह है कि भारत में मुस्लिम राज्य केवल एक सैनिक राज्य नहीं था अपितु वह सांस्कृतिक राज्य था जिसका अनुमान देश के भौतिक व आर्थिक विकास की अभिवृद्धि के लिए किये गये प्रयत्नों के द्वारा लगाया जा सकता है ।[१५]

एच.के. नकवी आन्तरिक व्यापार के बारे में लिखते है ''केंद्रीय स्थिति के कारण आगरा विश्व में व्यापार का प्रमुख केन्द्र था । समस्त माल जो कि साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों से मिलता था उसे आवश्यक रूप से आगरा भी पहुँचाया जाता था । अरमेनियन व्यापारी स्थल मार्ग से बड़ा कपड़ा लाते थे । सूरत, बुरहानपुर बड़ी मात्रा में लाल शालू के साथ कपास और छापेदार वस्त्र बंगाल के रास्ते आगरा भेजते थे । अहमदाबाद (गुजरात) से आने वाले मालों के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती है लेकिन कुछ स्त्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि उत्तम किस्म के रेशमी वस्त्र, कालीन एवं सामान्य किस्म के सूती वस्त्र जैसे 'बाफ्ता' आगरा भेजे जाते थे । इसके अतिरिक्त आगरा में प्राप्त विलासिता से सम्बन्धित वस्तुएँ, लारिन रूपी चाँदी के सिक्के, मोती, घोड़े तथा रेशमी वस्त्र गुजरात के बन्दरगाह से होते हुए आगरा पहुँचते थे ।

भारतीय व्यापारियों द्वारा आगरा में मसालों की आपूर्ति दक्कन से की जाती थी । यद्यपि डच व्यापारी इस व्यापार में १७ वी शताब्दी के मध्य दशक में विशेष रूचि दिखाने लगे थे । सिरोज, मलमल मुख्यत: शाही राजघराने, दरबारियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता था । जबकि छीटेदार वस्त्र भी बहुत श्रेष्ठ होते थे जिसे सामान्य विक्रय हेतु लाया जाता था । इसी प्रकार सिन्ध से आने वाले चमड़े के माल भी पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध थे जो सम्भवत: आगरा में भी प्राप्त होते थे ।

बंगाल से भारी मात्रा में माल नावों के माध्यम से भेजा जाता था । सुगन्धित तेल, रेशमी वस्त्र, सूती वस्त्र, कच्चे सिल्क, बास, हाथी, लकडी, दास एवं हिजड़े आगरा भेजे जाते थे । इसी प्रकार बंगाल से प्राप्त 'ग्रास सिल्क' जिसे

'टसर सिल्क' कहते हैं आगरा में भेजा जाता था । कालान्तर में सूरत से मूंगा, हाथी के दॉत, सिन्दूर, पारा, मिट्टी के वर्तन आगरा में सारे सामान विभिन्न व्यापारियों द्वारा लाये जाते थे ।[१६]

मुगल काल में देश का व्यापार उन्नत था । चीनी, रेशमी, सूती वस्त्र, शालदुसाले, हाथी दॉत की वस्तुएँ, मसाले आदि का भारत से निर्यात होता था । व्यापार स्थलीय और सामुद्रिक दोनों था । लंका, बर्मा, चीन, जापान, फारस, नेपाल, पूर्वी द्वीपसमूह, मध्य एशिया, पूर्वी अफ्रीका, अरब व लाल सागर के बन्दरगाहों आदि से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे । सूरत, भड़ौच, बसीन, कालीकट, कोचीन, चटगॉव, मछलीपट्टम, लाहरी बन्दर (सिन्ध) आदि के प्रसिध्द बन्दरगाह थे जिनसे समुद्र द्वारा विदेशी व्यापार होता था । कलाबूत, सस्ती धातुओं, घोडों, रेशम, अफ्रीकी गुलाम, युरोपियन शराब, मखमल, रेशमी वस्त्र, औषधियॉ, हाथी दाँत, अम्बर, कीमती पत्थर, इ. आदि वस्तुओं का भारत में आयात होता था । देश में दिल्ली, अहमदाबाद, आगरा, लाहौर, फतेहपुर सीकरी, बुरहानपुर, सूरत, बनारस, पटना, हुगली, ढाका, अहमदनगर, मुल्तान आदि प्रसिद्ध नगर थे जहाँ विदेशों से वस्तुएँ आती थी और सारे देश में फैल जाती थी ।

औरंगजेब का शासनकाल आते–आते वाणिज्य व्यापार और कृषि की दशा कुछ बिगडने लग गई थी । औरंगजेब के समय यह दशा एकदम बिगड गई और उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के समय देश की आर्थिक समृद्धि का एकदम पतन हो गया । औरंगजेब के निरन्तर युद्धो और प्रशासनिक अकुशलता ने कृषि उद्योग तथा व्यापार को बडा आघात पहुँचाया ।[१७]

निष्कर्ष :–

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है की, प्राचीन काल से चलता आ रहा हिंदूस्थान का आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार मध्ययूगीन काल में भी समृद्ध था । इस काल में भी विदेशी व्यापारी भारत में आते थे, लेकिन व्यापारी गतिविधियों पर भारतीय व्यापारीयोंकाही एकाधिकार रहता था । यह एकाधिकार १८ वी सदी तक कायम रहा । लेकिन डच, पोर्तुगिज बाद में अंग्रेजोने भारत में व्यापारी क्षेत्र में अपना प्रभाव जमायाँ, यहा तक की, उनका एकाधिकार स्थापीत हूआ । एकाधिकार इसलिये स्थापित कर सके, क्योंकि उनका माल यंत्रोत्पादीत था । वह भारतीय माल से अधिक सस्ता एवं आकर्षक था । इसके अलावा विदेशी सत्ताओंने भी इन व्यापारीयों का संरक्षण एवं मदत करने की निती अपनाई थी । वैसी निती भारतीय शासकोंने नही अपनाई । विदेशीयों ने मध्यकालीन भारतीय शासकों को लुभाकर और कुटनितीक तरीके से उनसे अधिकार और रियासते प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की थी । इसी अधिकार एवं रियासतों का विस्तार करके भारतीय व्यापारी और बाद में राजनितीक क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण प्रस्तापीत किया । हिंदुस्थान विदेशीयों के शोषण का शिकार बना यह प्रतित करने के उद्देश से ही यह शोध निबंध प्रस्तुत है ।

संदर्भ :–

नकवी एच.के., ''अर्बन सेन्टर एण्ड इंडस्ट्रीज'', पृ. ६२, ६३
सिंह ओ.पी., मध्यकालीन भारत, रिर्सच पब्लीकेशन जयपूर, १९८८, पृ. ११०, १११
पाण्डेय धनपती, ''आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास'', दिल्ली १९९२, पृ. १०,११
नकवी, पूर्वोध्दृत, पृ. ६४.
पाण्डेय धनपती, पूर्वोध्दृत, पृ. १२.
श्रीवास्तव आर्शिवादीलाल, ''मध्यकालीन भारतीय संस्कृती'', शिवलाल अग्रवाल ॲण्ड कंपनी,
आगरा १९९०, पृ. ३१
भारद्वाज दिनेशचंद्र, ''मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति'', कैलास पुस्तक सदन,

ग्वालियर १९९०, पृ. २०१
पाण्डेय अवधबिहारी, ''उत्तर मध्यकालीन भारत'', सेंट्रल बुक डेपो, इलाहाबाद, १९६८, पृ. ५७९, ५८०
पाण्डेय, पूर्वोध्दृत, पृ. ५८०
भार्गव बी.एस., ''मध्ययुगीन भारत की समस्याएँ'', कैलास पुस्तक सदन, भोपाल १९८१, पृ. २०२, २०३
भार्गव, पूर्वोध्दृत, पृ. २०३, २०४
पाण्डेय अवधबिहारी, पूर्वोध्दृत, पृ. ५८०, ५८१
श्रीवास्तव, पृ. ३१
भार्गव, पूर्वोध्दृत, पृ. २०४, २०५.
भार्गव, पूर्वोध्दृत, पृ. २०६
नकवी एच.के., ''अर्बन सेन्टर एण्ड इंडस्ट्रीज'', पृ. ५०, ५१, ५२
भार्गव, पूर्वोध्दृत, पृ. ४७५